लाल बहादुर शास्त्री

तप, त्याग, शौर्य और बलिदान की भूमि भारत ने ऐसे-ऐसे लाल पैदा किए हैं, जैसे विश्व में कहीं और नहीं हुए। ऐसे ही एक सपूत हैं, श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी। नाटे कद मगर विराट् व्यक्तित्व वाले इस सपूत का जन्म 2 अक्तूबर, 1904 को उत्तर प्रदेश में वाराणसी जिले के मुगलसराय में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री शारदा प्रसाद श्रीवास्तव और माता का नाम श्रीमती रामदुलारी देवी था। पिता साधारण रहन-सहनवाले एक ईमानदार अध्यापक थे और माता धार्मिक विचारों की महिला थीं। उनका परिवार हालाँकि बहुत गरीब था, लेकिन सच्चाई और ईमानदारी के कारण समाज में इस परिवार की बहुत प्रतिष्ठा थी।

बालक लाल बहादुर के जन्म के डेढ़ साल बाद ही इनके पिता का देहांत हो गया। इस घटना से माता रामदुलारी देवी स्वयं को असहाय महसूस करने लगीं। संकट की इस घड़ी में उन्हें अपने पिता का सहारा मिला। अपने डेढ़ साल के बालक लाल बहादुर को लेकर वे अपने पिता के घर चली गईं। वहाँ स्नेह के साथ लाल बहादुर का पालन-पोषण हुआ। उनके नाना प्यार से उन्हें 'नन्हे' कहकर पुकारते थे।

बचपन में बालक लाल बहादुर एक बार अपने कुछ साथियों के साथ एक बाग में फूल तोड़ने गए। साथियों ने तो जल्दी-जल्दी फूल तोड़कर अपनी झोली भर ली, पर बेचारे लाल बहादुर छोटे और कमजोर होने के कारण एक भी फूल न तोड़ सके। बड़ी मुश्किल से जैसे ही उन्होंने एक फूल तोड़ा, उधर से बाग का रखवाला आ पहुँचा। उसे देखते ही उनके साथी तो तुरंत भाग निकले, लेकिन लालबहादुर भाग भी न सके। रखवाले ने उन्हें पकड़ लिया और

पीटना शुरू कर दिया।

बालक लाल बहादुर फूट-फूटकर रोने लगा। रोते हुए ही रखवाले से कहा, ''मेरे पिता नहीं हैं, इसलिए मुझे मार रहे हो न।'' छोटे से बालक के मुख से ऐसी बात सुनकर रखवाले को दया आ गई। उसने लाल बहादुर की पीठ पर हाथ रखते हुए बड़े प्यार से कहा, ''बेटा, तुम्हारे पिता नहीं हैं, तब तो तुम्हारी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। तुम्हें स्वयं अच्छी आदतें सीखनी चाहिए।'' इतना सुनकर बालक लालबहादुर दोबारा रोने लगे। उन्होंने रखवाले से क्षमा माँगी और निश्चय किया कि जीवन में कभी ऐसा व्यवहार नहीं करेंगे, जिससे किसी को हानि हो।

इस घटना के बाद लालबहादुर के व्यवहार में भारी परिवर्तन आ गया। बालसुलभ चंचलता का स्थान गंभीर अनुशासन ने ले लिया। वे अपना प्रत्येक कार्य बिना किसी के कहे नियत समय पर करने लगे। जो भी काम उन्हें सौंपा जाता, उसे वे जिम्मेदारी के साथ पूरा करते थे। इस बात से उनकी माता व नाना को सुखद आश्चर्य हुआ। सच्चाई और ईमानदारी के गुण तो उन्हें विरासत में मिले ही थे। अब इसमें आत्मसम्मान और स्वाभिमान की भावना भी जुड़ गई थी।

लालबहादुर की प्रारंभिक शिक्षा मुगलसराय में हुई। यहाँ पाँचवीं कक्षा तक पढ़ने के बाद उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए वाराणसी भेज दिया गया। वाराणसी में उनका दाखिला हरिश्चंद्र हाई स्कूल में करा दिया गया। वहाँ वे अपने मौसा रघुनाथ प्रसादजी के यहाँ रहकर पढ़ाई करने लगे। थोड़े ही दिनों में उनका नाम प्रतिभावान विद्यार्थियों में गिना जाने लगा।

उन दिनों भारत पर अंग्रेजों का शासन था। वे भारतवासियों पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। ऐसे समय में अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए कांग्रेस पार्टी बनी। इसके नेता थे 'महात्मा गांधी'। बाद में गांधीजी के नेतृत्व में ही आजादी की लड़ाई लड़ी गई।

सन् 1921 की बात है, गांधीजी ने असहयोग आंदोलन शुरू कर दिया था। उन्होंने देश के

विद्यार्थियों, शिक्षकों, डॉक्टरों, वकीलों और अन्य सभी देशवासियों से अपना-अपना काम छोड़कर इस आंदोलन में अंग्रेज सरकार के विरुद्ध खड़े होने का आह्वान किया। उनके इस आह्वान पर देश का बच्चा-बच्चा उनके साथ खड़ा हो गया। लोग उनके एक इशारे पर जान तक देने को तैयार रहते थे। इस लहर से भला लाल बहादुर ही कैसे अछूते रहते। देशसेवा की ललक तो मन में पहले से ही थी। गांधीजी के आह्वान पर वे भी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े।

जब कांग्रेस द्वारा एक जुलूस निकाला जा रहा था तो उसमें लाल बहादुर जुलूस के आगे-आगे 'भारत माता की जय', 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगाते हुए चल रहे थे। देखते-ही-देखते अंग्रेज सैनिकों ने आकर जुलूस का रास्ता रोक लिया और एक-एक करके सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया; लेकिन जब इन्हें मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया तो उसने लाल बहादुर को छोटा बालक समझकर छोड़ दिया।

उसके बाद लाल बहादुर ने काशी विद्यापीठ में पढ़ने के लिए दाखिला ले लिया। काशी विद्यापीठ इनके घर से 8 किलोमीटर दूर था। इस प्रकार लाल बहादुर रोज 16 किलोमीटर पैदल चलकर पढ़ने जाते थे, लेकिन अपनी कक्षा में वे किसी से पीछे नहीं रहते थे। उन्होंने काशी विद्यापीठ से दर्शनशास्त्र विषय के साथ प्रथम श्रेणी में परीक्षा पास की। जिन आदर्शों के बीज लाल बहादुर के मन में बचपन में ही पड़ चुके थे, समय के साथ अब उनकी जड़ें गहरी जम चुकी थीं। अपने विद्यार्थी जीवन में ही एक बार लाल बहादुर अपने सहपाठियों के साथ गंगा पार मेला देखने गए। वापसी में उनके पास नाववाले को देने के लिए पैसे नहीं थे। लाल बहादुर के स्वाभिमान ने उन्हें इस बात की आज्ञा नहीं दी कि अपने साथियों से सहायता माँगें। वे कुछ देर बाद आने की बात कहकर वहीं रुक गए। जब उनके सभी साथी चले गए तो उन्होंने अपना धोती-कुरता उतारकर सिर पर बाँधा और कूद पड़े गंगा के जल में। उस समय गंगा में बाढ़ आई

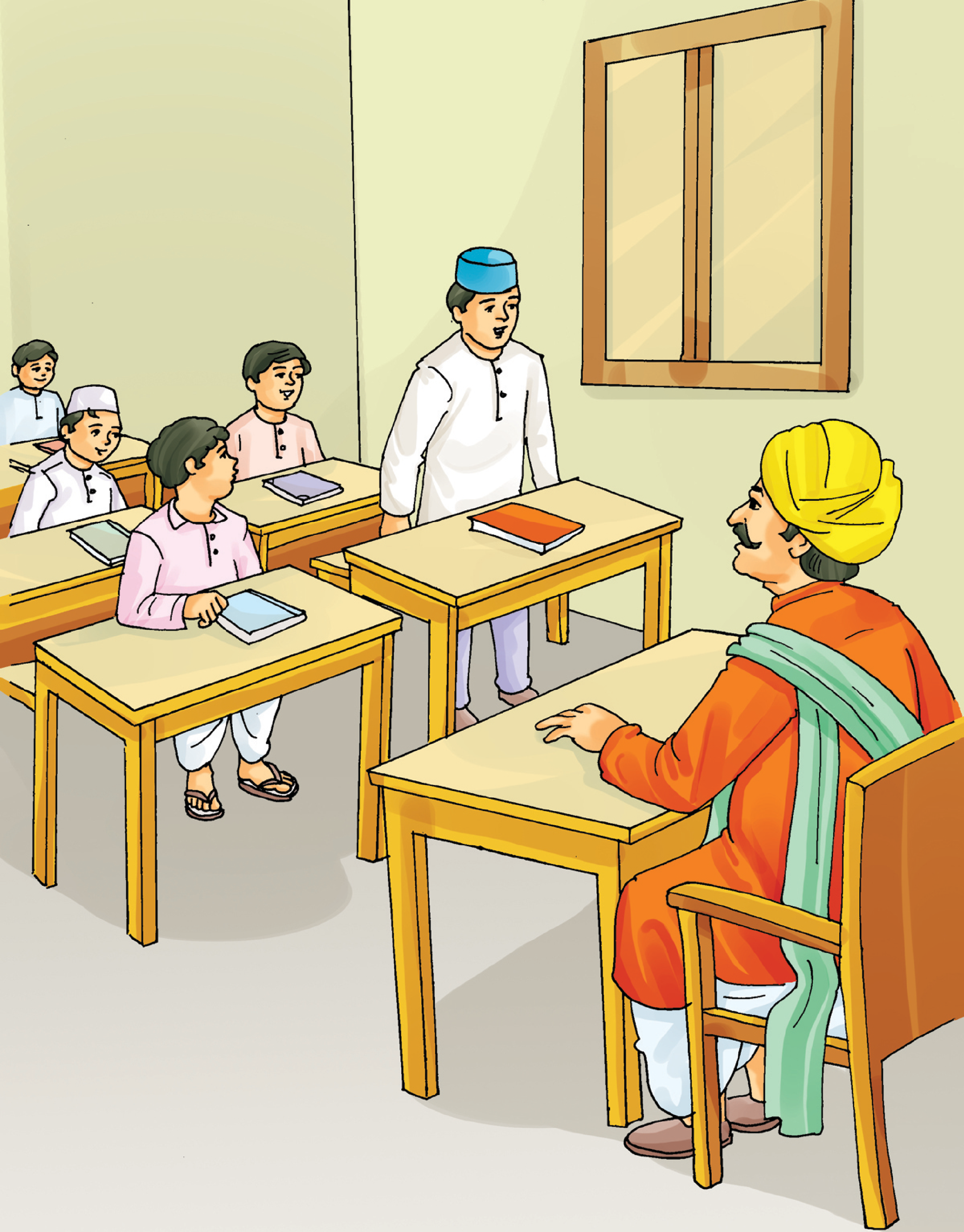

हुई थी और गंगा का पाट भी कम-से-कम आधा मील चौड़ा हो गया था। फिर भी बालक लाल बहादुर ने तैरकर यह दूरी तय की। उन्हें अपनी भुजाओं पर पूरा भरोसा था और उन्होंने उसे साबित भी कर दिखाया। वास्तव में चुनौतियों का सामना ऊँची कद-काठी से नहीं, बल्कि बुलंद इरादों से किया जाता है, और लाल बहादुर शास्त्री के इरादे बहुत ऊँचे थे।

शिक्षा समाप्त करने के बाद लाल बहादुर शास्त्री ने लोकसेवक मंडल के कार्यकर्ता के रूप में अपना राजनीतिक जीवन शुरू किया। मेहनत, लगन, सच्चाई और ईमानदारी के साथ काम करने के अपने गुणों के कारण जल्दी ही अन्य सांसदों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया।

लगभग 24 वर्ष की अवस्था में शास्त्रीजी का विवाह लालमणि देवी से हो गया। विवाह के बाद लालमणि देवी का नाम बदलकर ललिता देवी कर दिया गया। दहेज के रूप में शास्त्रीजी ने मात्र खादी का एक थान और एक चरखा स्वीकार किया था।

गांधीजी के अहिंसा के सिद्धांत से शास्त्रीजी बहुत प्रभावित हुए। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेते हुए शास्त्रीजी लगभग 8 वर्ष तक जेल में रहे। अंग्रेजों द्वारा अनेक कष्ट दिए जाने पर भी उन्होंने अपना मार्ग नहीं बदला। उनकी दिनचर्या तब भी संयमित एवं अनुशासित बनी रही।

जेलयात्रा के दौरान ही शास्त्रीजी ने अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया। उन्होंने मैडम क्यूरी की जीवनी का हिंदी अनुवाद और भारत छोड़ो आंदोलन का इतिहास लिखा।

एक बार शास्त्रीजी जब जेल में थे, उनकी बेटी पुष्पा की बीमारी की सूचना उनके पास पहुँची। जेलर ने अपनी विशेष सिफारिश से उन्हें पंद्रह दिन का अवकाश दिलवा दिया, लेकिन दुर्भाग्य से शास्त्रीजी के घर पहुँचने से पहले ही उनकी बीमार बेटी चल बसी। शास्त्रीजी अपनी मृत बेटी का अंतिम संस्कार करके जल्दी ही जेल के लिए लौटने लगे। घरवालों के लाख रोकने पर भी वे नहीं रुके। उन्होंने कहा, ''जिस काम के लिए मुझे रिहा किया गया था, वह काम हो गया है। अब मुझे जाना ही होगा।''

शास्त्रीजी में अहं भावना बिल्कुल नहीं थी; परंतु स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ था। उनके लिए पहले देश था, उसके बाद वे अपने या परिजनों के बारे में सोचते थे।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय जब गांधीजी ने अंग्रेजों के विरुद्ध व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया, तो अंग्रेज सरकार ने अनेक छोटे-बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। शास्त्रीजी पुलिस की नजरों से बच गए। उन्होंने गाँव-गाँव जाकर अंग्रेजों के अत्याचार के विरुद्ध प्रचार करना शुरू कर दिया। अपने छोटे कद और चालाकी के कारण वे हमेशा पुलिस की नजरों से बचते रहे।

स्वतंत्रता सेनानियों और नेताओं के अथक प्रयासों से अंततः देश आजाद हो गया। शास्त्रीजी के नेतृत्व-गुणों को देखते हुए उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार के पुलिस व यातायात विभाग में मंत्री पद सौंपा गया। अपने पद पर आसीन होते ही उन्होंने प्रशासन में आमूल-चूल परिवर्तन कर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होंने पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी राष्ट्र की मुख्यधारा से जुड़ने के लिए प्रेरित किया। अपने मंत्रित्वकाल में शास्त्रीजी ने पहली बार बस कंडक्टर के रूप में महिलाओं की नियुक्ति की।

शास्त्रीजी का पूरा जीवन ही कठिन साधना और परिश्रम से भरा रहा। लगातार काम करने की उनमें अपार क्षमता थी। छोटा कद और कमजोर शरीर कभी उनके किसी कार्य में बाधा नहीं बना। अपनी छोटी कद-काठी के कारण शास्त्रीजी को कई बार लोगों की हँसी का पात्र भी बनना पड़ता; परंतु वे इतने सरल हृदय थे कि बजाय किसी की बात का बुरा मानने के स्वयं भी उस मजाक में शामिल हो जाते और उस घटना को इतना रोचक बना देते कि लोगों को वह लंबे समय तक याद रहती। पुलिस व यातायात मंत्री रहते हुए एक बार वे आगरा के दौरे पर आए थे। उनके आगमन का समाचार सुनकर बड़े-बड़े पुलिस अधिकारी रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए एकत्र थे। गाड़ी रुकने पर उनका डिब्बा नियत स्थान से कुछ आगे निकल गया। शास्त्रीजी डिब्बे से उतरकर बाहर जाने लगे तो एक सिपाही ने उन्हें यह कहकर रोक दिया कि

इधर से हमारे मंत्रीजी जानेवाले हैं, जो इसी गाड़ी से आए हैं। शास्त्रीजी ने कुछ कहने के लिए जैसे ही मुँह खोला, उस सिपाही ने उन्हें डपटकर चुप करा दिया। अचानक एक दूसरे सिपाही की नजर शास्त्रीजी पर पड़ी, जो उन्हें पहचानता था, वह दौड़कर उनके पास पहुँचा और ससम्मान ले जाने लगा। यह देखकर पहले वाले सिपाही की हालत खराब हो गई, परंतु शास्त्रीजी शांत भाव से मुसकराते हुए उसका कंधा थपथपाकर बाहर निकल गए।

समर्पण भाव, ईमानदारी, सच्चाई और लगन के साथ काम करनेवाले शास्त्रीजी थोड़े ही समय में जनता की आँखों का तारे बन गए। अपने सरल स्वभाव के कारण वे बड़ी आसानी से लोगों में घुल-मिल जाते। शास्त्रीजी के प्रति लोगों के अपार स्नेह का एक बड़ा कारण उनकी स्पष्टवादिता भी थी। वे लोगों को प्रभावित करने के लिए कभी भी न तो उन्हें झूठे आश्वासन देते थे, न ऐसे वायदे करते, जिन्हें वे पूरा ही न कर सकें। इसके बजाय वे शांत और मधुर शब्दों में वास्तविक स्थिति समझा देते थे। उनकी यह सच्चाई सदैव उनकी सहायक रही।

सन् 1952 में नेहरूजी ने अपने मंत्रिमंडल में उन्हें केंद्रीय रेलमंत्री का दायित्व सौंपा। इनके मंत्रित्वकाल में ही एक सिग्नलमैन की चूक से महबूबनगर (हैदराबाद) में एक रेल-दुर्घटना हो गई। शास्त्रीजी ने उसकी नैतिक जिम्मेदारी स्वयं लेते हुए अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। पंडित नेहरू त्यागपत्र स्वीकार ही नहीं कर रहे थे, परंतु शास्त्रीजी अपनी बात पर अडिग रहे। उन्होंने जीवन भर अपने आदर्शों के प्रति दृढ़ता का परिचय दिया।

पं. गोविंद वल्लभ पंत के निधन के बाद शास्त्रीजी को भारत का गृहमंत्री बनाया गया। यह पद जिम्मेदारी और नेतृत्व की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। गृहमंत्री के पद पर रहकर जिस आत्मविश्वास और नेतृत्व की अद्वितीय क्षमता का परिचय शास्त्रीजी ने दिया, वह प्रशंसनीय था। उसी दौरान असम के भाषा-विवाद को शांत करने के लिए उन्होंने जो उपाय किया, वह आगे चलकर 'शास्त्री फॉर्मूला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिससे इस समस्या का अंत

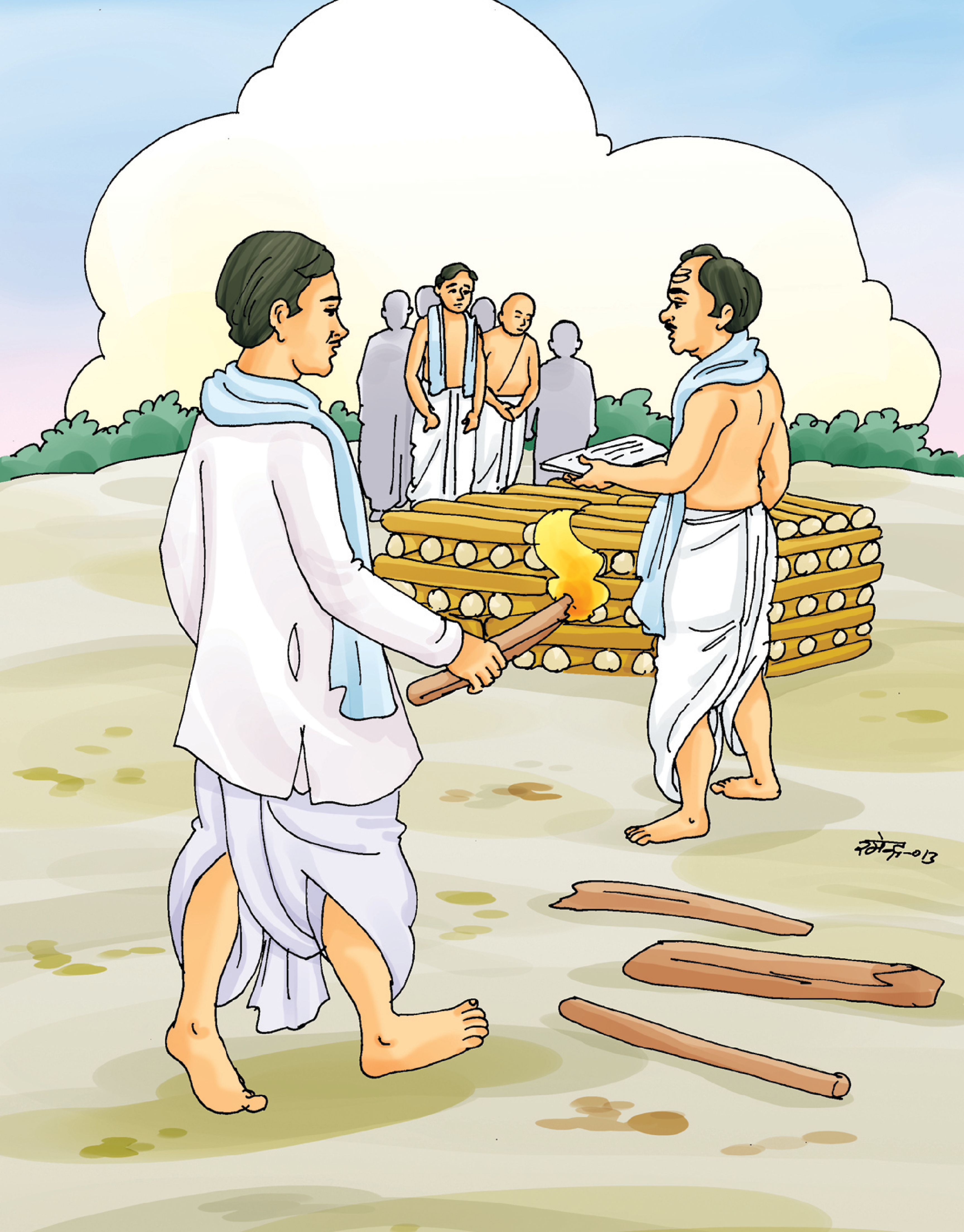

पूरी तरह से हो गया।

इस प्रकार शास्त्रीजी लगातार समर्पण भाव से देश की सेवा करते रहे।

जब प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू का स्वास्थ्य गिरने लगा तो वे प्रधानमंत्री पद के लिए अपने उत्तराधिकारी की तलाश करने लगे। लाल बहादुर शास्त्रीजी उनकी कसौटी पर खरे उतरे। इसी कारण नेहरूजी ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय किया।

उसी दौरान भारत-चीन युद्ध में भारत पराजित हो गया और इधर पं. नेहरू का भी देहांत हो गया। देश की जनता और अन्य नेताओं ने शास्त्रीजी को सबसे योग्य और पं. नेहरू का सच्चा उत्तराधिकारी समझकर उन्हें देश का प्रधानमंत्री बना दिया।

वह समय ऐसा था, जब देश पर घोर विपत्तियों के बादल मँडरा रहे थे। देश के सामने एक तरफ तो सुरक्षा की चुनौती थी, दूसरी तरफ देश में कहीं सूखा और कहीं बाढ़ के कारण किसानों की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई थी। इसके अलावा हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के विरोध में दक्षिण भारत में दंगे भी शुरू हो गए थे। ऐसा लग रहा था, मानो भारत शीघ्र ही कई टुकड़ों में बँट जाएगा। विशेष रूप से सूखे की स्थिति होने से अन्न की समस्या के कारण केंद्र पर दबाव बढ़ता ही जा रहा था। प्रांतों के मुख्यमंत्री केंद्र से अधिक-से-अधिक सहायता की माँग कर रहे थे।

उन्हीं दिनों महाराष्ट्र सरकार के मुख्यमंत्री श्री नाइक का निमंत्रण पाकर शास्त्रीजी बंबई पहुँचे। शास्त्रीजी के सम्मान में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। समारोह में अनेक प्रकार के व्यंजन मेज पर सजे हुए थे। शास्त्रीजी शांत भाव से सबकुछ देखते रहे। कुछ देर बाद उन्होंने श्री नाइक से कहा, ''मेज पर सजे व्यंजन और लोगों की प्लेटों में बचे हुए आहार की मात्रा देखकर यह विश्वास कर पाना बड़ा कठिन है कि इस राज्य में अन्न की सचमुच कोई कमी है।'' शास्त्रीजी की बात का श्री नाइक पर इतना प्रभाव हुआ कि उन्होंने अगले ही दिन

बिना केंद्रीय सहायता के महाराष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने की घोषणा कर दी और जी-जान से इस घोषणा को साकार करने में जुट गए।

ऐसे संकट की घड़ी में शास्त्रीजी ने जिस योग्यता और सूझबूझ से एक-एक समस्या का हल निकाला, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। अन्न की समस्या हल करने के लिए घर-घर में खेती का अभियान शुरू किया गया। सिंचाई की समस्या सुलझाने के लिए ट्यूबवेल की व्यवस्था की गई। इसके अलावा अन्य बहुत से सरल उपायों से शास्त्रीजी ने समस्या का समाधान किया।

अभी देश इस संकट से उबर भी नहीं पाया था कि पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया। भारतीय सैनिक और जनता भी क्रोध से पागल हो गई, किंतु शास्त्रीजी शांत थे। उनके शांत बैठने का कारण था—देश की नाजुक स्थिति। शास्त्रीजी ने अपनी सूझबूझ से मामले को शांतिपूर्ण ढंग से हल कर लिया और दोनों देशों में समझौता हो गया।

लेकिन कुछ ही समय बाद पाकिस्तान ने एक बार फिर भारत पर आक्रमण कर दिया। पाकिस्तानी सेना भारतीय प्रदेशों पर बराबर अधिकार करती जा रही थी। ऐसी स्थिति में शास्त्रीजी ने भारतीय सेना को इसका मुँहतोड़ जवाब देने का आदेश दिया। युद्ध में पाकिस्तान बुरी तरह पराजित हुआ। 22 दिन के इस विनाशकारी युद्ध में भारतीय जवानों ने बहादुरी के नए मानदंड स्थापित किए। सारे देश में खुशी का माहौल था, परंतु शास्त्रीजी मौन थे। वह जानते थे कि अभी बहुत सारी समस्याओं का समाधान निकलना बाकी है।

भारत और पाकिस्तान के बीच शांतिपूर्ण संबंध स्थापित करने के उद्देश्य से रूस के प्रधानमंत्री श्री कोसीगिन ने शास्त्रीजी तथा अयूब खाँ को ताशकंद में आमंत्रित किया। आठ दिन के लंबे विचार-विमर्श के बाद ताशकंद-घोषणा के रूप में युद्ध समाप्ति की घोषणा की गई। इस घोषणा के नौ घंटे बाद 11 जनवरी, 1966 को शास्त्रीजी को दिल का दौरा पड़ा और

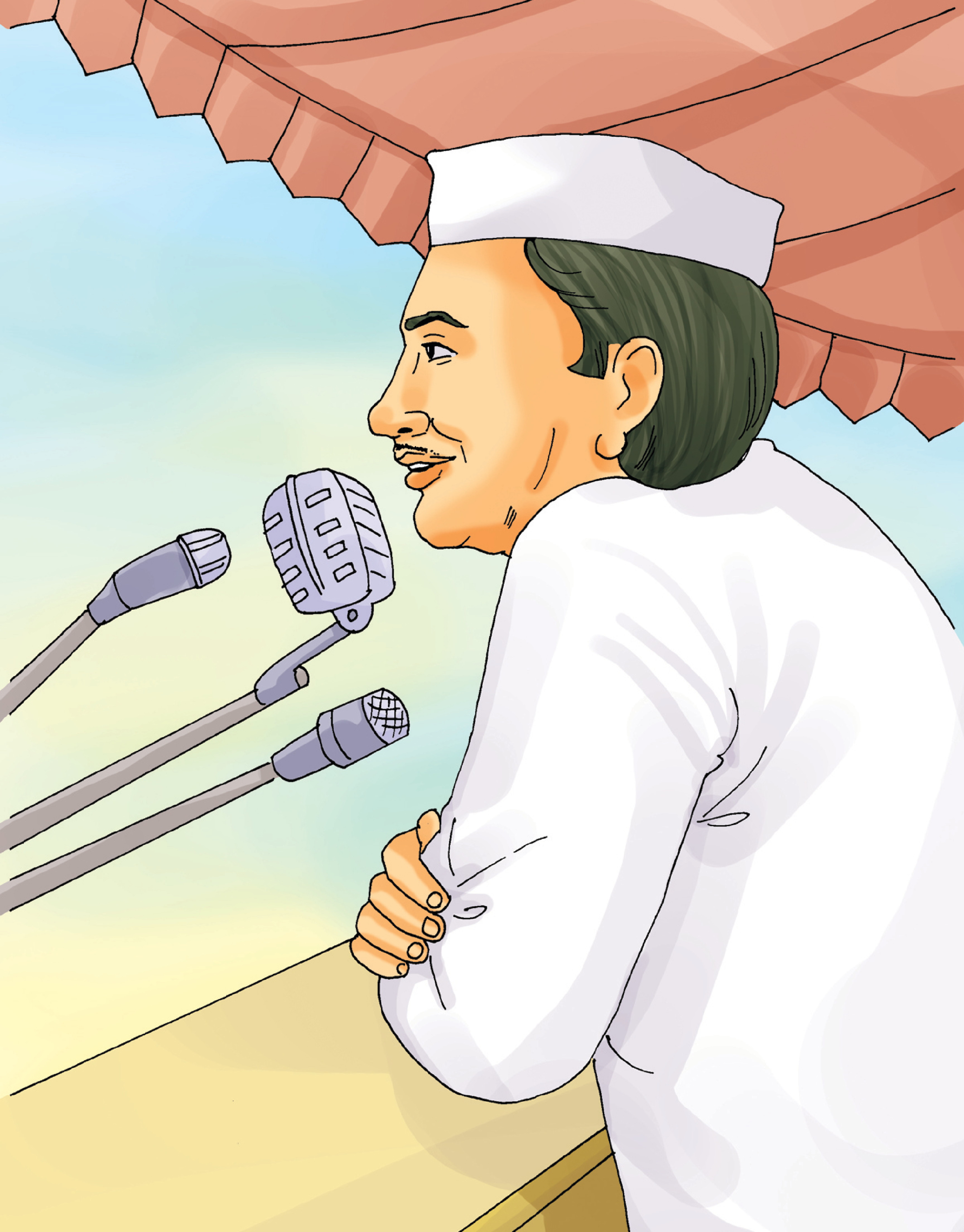

भारतमाता का यह अमर सपूत लाखों लोगों को रोता–बिलखता छोड़कर सदा–सदा के लिए धरती माता की गोद में समा गया।

शास्त्रीजी ने देश को 'जय जवान, जय किसान' का नारा दिया। उनका मानना था कि देश के विकास और उसकी सुरक्षा में जितना योगदान जवानों का होता है, उतना ही किसानों का भी होता है।

आज भी शास्त्रीजी के जीवन के आदर्श और उनके संदेश हमारे लिए प्रेरणास्त्रोत हैं।

□□□